International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 265-269

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 265-269
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 05-03-2017
Accepted: 06-04-2017

**अरुण कुमार दीप**
शोधछात्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

**Correspondence**
**अरुण कुमार दीप**
शोधछात्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

# वेदों में पञ्च महायज्ञ विधान

**अरुण कुमार दीप**

## प्रस्तावना

वैदिक ऋषि प्रकृति के साहचर्य में रहते हुए सृष्टि में होने वाली अनेक रहस्यात्मक क्रियाओं के प्रत्यक्षदर्शी थे। उन्होंने ब्रह्माण्ड में होने वाले दिव्य कृत्यों का भी अनुभव किया था। ब्रह्माण्ड में कार्यरत प्रकृति की अनन्त शक्तियों में परस्पर समन्वय एवं सामञ्जस्य स्थापित करके सर्ग सञ्चालन हेतु शक्तिवर्द्धन करने वाले उसी दिव्य कृत्य का अपर नाम 'यज्ञ' है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव वैदिक ऋषियों ने किया था। उसी अनुभव के आधार पर प्रत्यक्ष और परीक्षित सत्य के रूप में जिस देवी कृत्य की परिकल्पना उन्होंने की थी उसी का नाम वस्तुतः यज्ञ हैं। दूसरे शब्दों में सृष्टि प्रक्रिया का नाम यज्ञ है। सर्ग रचना हेतु विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों में सतत चलने वाली आदान-प्रदान की प्रक्रिया भी यज्ञ कहलाती है।

यज्ञ वैदिक संस्कृति की समन्वय की भावना का प्रतीक है। वह वैदिक युग के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन का केन्द्र रहा है। वैदिक मान्यताओं के अनुसार यज्ञ इस धरा पर स्वर्गीय देवों के मिलन का दिव्य योग है। यज्ञ वैदिक समाज की एकता की और उसके सामूहिक विश्वासों एवं उदात्त धार्मिक प्रक्रियाओं का प्रतीक है उसको वैदिक धर्मका स्तम्भ माना जाता है।

## यज्ञ शब्द का अर्थ

'यज्' धातु से 'नङ्' प्रत्यय के योग से 'यज्ञ' शब्द की व्युत्पत्ति हुई, इस धातु के तीन अर्थ होते हैं- 'यजदेवपूजासंगतिकरणदानेषु' अर्थात् देवपूजा सङ्गतिकरण और दान इन तीन अर्थों में प्रयोग किया है-

## देवपूजार्थक यज्ञ

क. यजनं इन्द्रादि देवानां पूजनं सत्कार भावनं यज्ञः।
ख. इज्यन्ते (पूज्यन्ते) देवाः अनेनेति यज्ञः।
ग. इज्यन्ते सम्पूजिताः तृप्तिमासाद्यन्ते देवा होत्रेतियज्ञः।

## संगति करणार्थक

क. यजनं धर्मदेशजातियमर्यादारक्षायै महापुरुषाणामेकीकरणं यज्ञः।
ख. इज्यन्ते स्वीक्रियन्ते विश्वकल्याणाय परिभ्रमणं कृत्वा महान्तो विद्वांसः वैदिकशिरोमण्यः व्याख्यान रत्नाकराः निमन्त्रयन्ते अस्मिन्नितियज्ञः।

## दानार्थ यज्ञ

क. इज्यन्ते सन्तोष्यन्ते याचका येन कर्मणा स यज्ञः।
ख. इज्यते भगवति सर्वस्वं निधाप्यते येन वा स यज्ञः।
ग. इज्यते देवतोद्देशेन श्रद्धापुरस्सरं द्रव्यादि त्यज्यते अस्मिन्निति यज्ञः।

**यज्ञ शब्द का वेद प्रतिपादित अर्थ**

क. यज्ञः कस्यात्? प्रख्यातं यजति कर्मेति नैरुक्ताः। याचञ्यो भवतीति वा यजुर्भिरुन्नो भवतीति वा, बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः यजूँष्येनं नयन्तीति वा। (निरुक्त-3/4/19)

ख. यत्र प्रक्षेपाङ्गको देवतोद्देश पूर्वको द्रव्यत्यागोऽनुष्ठीयते स यागपदार्थः।

(भाट्टदीपका-4.2.12)

**यज्ञ शब्द के कतिपय व्युत्पत्तिजन्य अर्थ**

क. येन सदनुष्ठानेन सम्पूर्णविश्वं कल्याणं भजेत् तद् यज्ञपदाभिदेयम्।

ख. यागाङ्गसमूहस्य एकफल साधनाय अपूर्ववान कर्मविशेषोयागः।

ग. येन सदनुष्ठानेन स्वर्गादिप्राप्तिः सुलभा स्यात् तद् यज्ञ पदाभिदेयम्।

यज्ञ की उपर्युक्त व्युत्पत्तिजन्य परिभाषाओं को संयुक्तकर मत्स्यपुराण (144.44) में कहा गया है कि जिस कर्म विशेष में देवता हवनीय पदार्थ द्रव्य वेद ऋत्विज् और दक्षिण इन पाँच का संयोग हो उसे या कहते हैं-

देवानां द्रव्य हविषां ऋक्सामयजुषां तथा।
ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगे यज्ञ उच्यते।।

उपरोक्त वर्णित 'यज' धातु का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ देवपूजा, संगतिकरण तथा दान का तात्पर्य यह भी है- प्राणरूप देवशक्तियों को प्रसन्न करना, दो तत्त्वों के मेल से नूतन तत्त्व का निर्माण करना अथवा अखिल जगत में प्रवर्तित आदान-प्रदान की सतत् प्रक्रिया। आत्मत्याग (दान) यज्ञ रूप की यह पक्रिया निरन्तर चलती रहती है जिसके परिचालक देवता अग्नि (आदित्य) और सोम हैं इस यज्ञ में अग्नि (आदित्य), आदाता (अत्ता) तथा सोम अन्न हवि है आदित्य अनवरत प्रकृति से सोम रूपि अन्न (रस-तत्त्व) की आहुति ग्रहण करता रहता है। और उससे अनन्त तेज अथवा अग्नि (प्रकाश) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैलता रहता है। और यह आदित्य समृद्ध होता रहता है- 'सोमेनादित्या बलिनः।' यह प्रक्रिया ब्रह्माण्ड में सतत् चलती रहती है इसी कारण जगत को 'अग्निषोमात्मक' का गया है। 'अग्निषोमात्मकं जगत्' (बृह. जा. 2.7) यही प्राकृत यज्ञ है जो अव्यवहित रूप से सृष्टि में चल रहा है इसी से ही जगत का निर्माण एवं धारण पोषण होता है तथा सृष्टि का निर्माण अप्रतिहत रूप से चलता रहता है। वेदों में इसी ऋत की सुज्ञा दी गई है-

ऋतं वै सत्यं यज्ञः (मैत्रा.स.- 1.10.12)
यज्ञो वा ऋतस्य योनिः। (शत.ब्रा. 1.3.4.16)

जगत की तीन शक्तियाँ- सूर्य चन्द्र और अग्नि उसी ऋत् के मार्ग का अनुसरण करते हैं-

ऋतस्य पन्थामनु तिस्त्र आगुस्त्रयो धर्मा.....। (अथर्व. 8.9.13)

उसी ऋत को यज्ञ का स्वरूप माना गया है जिससे समग्र सृष्टि का धारण पोषण होता है और जिसके कारण सृष्टि का विकास भी होता है- ''ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन्। (ऋ. 5. 15.2) ब्रह्माण्ड की यह यज्ञ प्रक्रिया पिण्ड रूप मानव देह में भी निरन्तर चलती रहती है। शरीर में विद्यमान वैश्वानर अग्नि (जठराग्नि) भी नित्यशः अन्न भोज्यपदार्थ की आहुति ग्रहण करता है जिससे शक्ति संवर्धन होता रहता है 'अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषेयेनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते' (शत.ब्रा. 14.08.10.1) और देह के अधोभाग में जावेदस (वीर्यरूप कामाग्नि) रूप में विद्यमान अग्नि सृष्टि का विकास करता है-''नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहुस्त्रैणमेषाम्।'' (अथर्व. 4.34.2) भौतिक यज्ञ इन्हीं सूक्ष्म यज्ञों के प्रतीक हैं और लोक व्यवहार के लिए भी आवश्यक हैं। अतः देवता (शक्ति) के लिए अथवा जगत् कल्याण हेतु प्रियतम वस्तु का त्याग (आत्मसमर्पण) ही इसका मूल मन्त्र है। इस स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों यज्ञों का सुन्दर प्रतिपादन गीता में दृष्टव्य है-

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म सयुद्भव।।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भव।
तस्यात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।। (गीता 2.14-15)

इस प्रकार के यज्ञ धातु से निष्पन्न अर्थ देवपूजा, संगतिकरण तथा दान का तात्पर्य वेद में प्राप्त होता है।

**यज्ञ का स्वरूप एवं उपयोगिता**

वैदिक संस्कृति यज्ञ प्रधान संस्कृति है, यज्ञ भावना उसका मूलमन्त्र है। चारों वेदों के आरम्भिक मन्त्र यज्ञ को प्रेरणा देने वाले हैं और यज्ञ की प्रधानता प्रतिपादित करते हैं-

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। ऋ. 1.1.1
देवा वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे। यजु. 1/1
निहोता सत्सि बर्हिषि। साम. 1/1
वाचस्पतिर्बला.....।अथर्व. 1/1

ऋग्वेद का पहला मन्त्र यज्ञ के देवरूप में अग्नि की स्तुति है तथा कहा है कि हम उस गूढ़तम् गुहानिहित गह्वर अग्नि का जो सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान सुसंचालक देवरूप से उपास्य एवं वन्दनीय, ऋत्विज रूप हमारे जीवन यज्ञ निमित्त समस्त सृष्टि यज्ञ रूप कर्मों का करने वाला हमारे जीवन यज्ञ के लिए होता रूप से समस्त जीवन हव्यों का प्रदाता और समस्त प्रकार से रमणीयतम् श्रेष्ठतम् ऐश्वर्यों का देने वाला है- उस अग्नि स्वरूप, यज्ञमय परमेश्वर की हम स्तुति करें। यजर्वेद का पहला मन्त्र यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म प्रतिपादित करता है, सामवेद का प्रथम मन्त्र 'बर्हिषि' पद से यज्ञ वेदी को ही इंगित करता है, तथा अथर्ववेद के पहले मन्त्र में आया 'वाचस्पति' शब्द की यज्ञ को ही 'वाक्पति' घोषित करता है।

वेद कर्म काण्ड प्रधान हैं। वेदों का मुख्य विषय 'यज्ञ' है। यज्ञों से ही वेद प्रतिष्ठित एवं मान्य हैं। यज्ञ के द्वारा ही समस्त संसार का कल्याण होता है। इसीलिए वेद में यज्ञ-यागादि क्रियाओं का विशेष रूप से वर्णन मिलता है (विष्णुधर्मोत्तर पुराण (2.104)) में तो यहाँ तक कहा

गया है कि वेदों का प्रादुर्भाव यज्ञों के लिए हुआ है। ''वेदा तु यज्ञार्थमभिप्रवृत्त:'' इससे स्पष्ट है कि आर्यों ने यज्ञ को सर्वाधिक महत्त्व दिया था।

यज्ञ की महत्ता को प्रकट करने के लिए एक वेदमन्त्र में प्रश्न किया गया है कि पृथ्वी का परम अन्त कहाँ है और विश्व की नाभि यानि केन्द्र कहाँ है? अगले मन्त्र में इसका उत्तर दिया गया है कि यज्ञवेदी ही पृथ्वी का परम अन्त है और यज्ञ ही इस विश्व का केन्द्र या नाभि है-

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्या: पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभि:
इयं वेदि: परो अन्त: पृथिव्या: अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि:।।
यजु. 23/61-62

भाव यह है कि पृथ्वी पर रहने वाले जीवों की सब कामनाएँ यज्ञ की वेदी पर ही पूर्ण प्रतिष्ठित होती है इह लोक और परलोक, धर्म और अर्थ सभी वेदी पर सिद्ध होते हैं अत: यज्ञवेदी ही पृथ्वी का अन्त है और इस वेदी पर जिन यज्ञों का अनुष्ठान होता है, वे संसार के जीवों का कल्याण करने वाले हैं इसलिए यज्ञ इस संसार का केन्द्र है।

अथर्ववेद पृथिवीसूक्त में प्रथम मन्त्र में बताया गया है कि छह तत्त्वों के द्वारा पृथ्वी अपने स्थान पर धारण की जाती है। ये छ: तत्त्व हैं- सत्य, ऋत, दीक्षा, तप्, ब्रह्म और यज्ञ-

सत्यं बृहद् ऋतुमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म
यज्ञ: पृथिविं धारयन्ति। अथर्व. 12/1/1

इससे भी यही स्पष्ट होता है कि वेद के अनुसार यज्ञ सृष्टि का धारक नियामक तत्त्व हैं अत: स्रष्टा और सृष्टि दोनों ही यज्ञ है यज्ञमय हैं और उन निरन्तर यज्ञ की ज्योति दीप्ति और वर्च सनिद्ध होती रहती हैं। वही सृष्टि का जीवन है उसी से सृष्टि का जीवन है।

ईश्वर के गुण एवं स्वभाव, कर्म में परिणत होने पर यज्ञ का रूप धारण कर लेते हैं ईश्वर का यह यज्ञ प्रकृति में माध्यम से व्यक्त और अव्यक्त रूप में हो रहा है। उन यज्ञों का दर्शन ज्ञान और अनुभूति जीवात्मा स्व में तथा पर में, प्रकृति में सदा कर सकता है तथा उसके अनुसार अपने जीवन को यज्ञमय बना सकता है इसीलिए वेद में कहा है-''आयुर्यज्ञेन कल्पताम्'' (यजु. 18/29) अर्थात् यज्ञ से आयु को उत्तरोत्तर समर्थ एवं शक्तिशाली बनानते रहो क्योंकि यज्ञ रहित जीवन में क्षीणता एवं निस्तेजता होती है- 'अयज्ञियो हतवर्चो भवति'' (अथर्वा. 12/02/36)। क्षीणता और निस्तेजता से मलिनता, दोष, रोग और दु:ख के बन्धन प्राणियों को जकड़ लेते हैं। अत: यज्ञ रहित जीवन दु:खों का हेतु है। जीवन यज्ञ से युक्त ही रहना पृथक नहीं, यही हमारे जीवन का प्रमुख कर्म तथा देवी कर्म हैं इसीलिए शतपथ ब्राह्मण में कहा है-

यज्ञो वै श्रेष्ठतमंकर्म। शतपथ. 1/5/4/5

अर्थात् यज्ञ ही निश्चय से परम श्रेष्ठ कर्म है। परमश्रेष्ठ परमात्मा है उसका कर्म यज्ञ भी परमश्रेष्ठ है।

यज्ञ का सूक्ष्म आध्यात्मिक रहस्य, इससे उपर एवं अत्यन्त गहरा है उसकी पहुँच एक ओर तो अन्त:करण और अन्तरात्मा तक है तथा दूसरी ओर वह समग्र ब्रह्माण्ड में समाया हुआ है। सृष्टि की सम्पूर्ण व्यवस्था, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का चक्र जिस शक्ति या प्रक्रिया से चल रहा है उसे उस दृष्टि से यज्ञ कहा जाता है। इस भाँति समस्त विश्व में एक व्यापक यज्ञ चल रहा है और उसके अन्तर्गत फिर अनेक यज्ञ चल रहे हैं-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमान: सचन्त यत्र पूर्वे साध्या:सन्ति देवा।
यजु. 31/16

अर्थात् ज्ञानयज्ञ से देवों, विद्वानों ने यज्ञ का अनुष्ठान किया यज्ञ ही सर्वप्रथम एवं सर्वप्रमुख धर्म है। वे विद्वान इस अनादि काल से प्रवृत्त यज्ञ रूप धर्म से मुक्तिसुख को पाकर पहले युक्त हुए विद्वानों से समान आनन्द भोगें।

अत: यह पृथ्वी एक विशाल वेदी है जिस पर सर्वत्र विविध यज्ञ प्रकट हो रहे हैं परमात्मा ने जब सृष्टि रचना की तो मानो 'सृष्टियज्ञ' क्रिया जिसमें वसन्त ऋतु ने धृत का कार्य किया यानि उसने इस यज्ञाग्नि को प्रदीप्त किया ग्रीष्म ऋतु ने उस ब्रह्माण्ड यज्ञ में अपनी प्रचण्ड उष्मा समिधा के रूप में प्रदान की और शरद ऋतु ने अनेक औषधियों को परिपक्व करके हवि के रूप में समर्पित किया-

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म: शरद्धवि।। यजु. 31/14

इस प्रकार यह विविध सृष्टि एवं समग्र संसार यज्ञ रूप है। 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' इस प्रसिद्ध वचन के अनुसार यह मनुष्य देह भी यज्ञमय है, क्योंकि इसकी सारी क्रियाऐं यज्ञमय हैं इसीलिए वेद में कहा है-

इयं ते यज्ञिया तनू:। यजु. 4/13

अर्थात् हे मनुष्य! तेरा शरीर यज्ञ से परिपूर्ण है शरीर के अन्दर बैठे हुए सब इन्द्रियादि देव (दिव्य शक्तियाँ) अपना-अपना यज्ञ सम्पादित कर रहे हैं इसीलिए ऋषियों ने कहा है कि निश्चय ही पुरुष स्वयं यज्ञ है यानि यज्ञ से परिपूर्ण है-

पुरुषो वाव यज्ञ:। (छा.उप. 3/16)

वेदों में सर्वत्र ही यज्ञों के विषय में प्रतिपादन किया गया है। वेद में वैदिक यज्ञों के मुख्य दो भेद माने गये हैं- (1) श्रौत और (2) गृह्य। श्रौत यज्ञों के अन्तर्गत-अग्निष्टोम, बाजपेय, सोमयाग, दर्शपौर्णमास आदि आते हैं तथा गृह्य यज्ञों में पञ्च महायज्ञों की गणना होती है। श्रौत यज्ञों का उद्देश्य है स्वर्ग, सम्पत्ति और पुत्रादि की कामना किन्तु पञ्च महायज्ञों का उद्देश्य है- विधाता, ऋषियों, पितरों और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के जीव जन्तुओं के प्रति अपने कर्त्तव्यों का परिपालन करना। इन पञ्च

महायज्ञों का विधान प्रमुखत: ब्राह्मग्रन्थों, आरण्यकों, गृह्यसूत्रों धर्म सूत्रों तथा स्मृतियों में प्राप्त होता है।

**पञ्चमहायज्ञ**

वैदिक युग के धर्म कर्ममय जीवन में पञ्चमहायज्ञों के सम्पादन की व्यवस्था की। ब्राह्मण-ग्रन्थों, आरण्यकों, गृह्यसूत्रों और स्मृतियों में उनको प्रतिदिन करने का विधान है। गृहस्थ जीवन के अनिवार्य कर्त्तव्यों में उनकी गणना की गई है। पञ्चमहायज्ञों के विषय में शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख प्राप्त होता है [1] जो इस प्रकार हैं- (1) भूतयज्ञ (जीवों को अन्नदान देना), (2) मनुष्य यज्ञ (अतिथि सत्कार), (3) पितृयज्ञ (पितरों का तर्पण), (4) देवयज्ञ (काष्ठादि के द्वारा अग्नि में आहुतियां), (5) ब्रह्मयज्ञ (वेद का अध्ययन एवं अध्यापन) नाम से कहे गये हैं। उनकी संक्षिप्त परिभाषा में कहा गया है। चाहे वह एक ही ऋचा या एक सूक्त का हो, वह ब्रह्मयज्ञ है। जब जीवों को बलि (भोजन या आहार) दी जाती है तो वह भूतयज्ञ है ब्राह्मणों (या अतिथियों) को भोजन दिया जाय तो वह मनुष्य यज्ञ है। जब पितरों को श्राद्ध (स्वधा) दिया जाता है, चाहे वह जल ही का क्यों न दिया जाय वह पितृयज्ञ है। जब अग्नि से आहुति दी जाती है चाहे वह समिधा मात्र से क्यों न हो वह देवयज्ञ है। महाराज मनु ने भी श्रुति आधारित पाँचों यज्ञों का विधान किया है।[2]

उक्त पाँच यज्ञों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

**1. ब्रह्मयज्ञ**

ब्रह्म अर्थात् ईश्वर एवं वेद। ईश्वर की उपासना तथा वेद का स्वाध्याय ही ब्रह्मयज्ञ है [3] इश्वरोपासना को आम भाषा में 'सन्ध्या' के नाम से जाना जाता है अर्थात् जिसका भली-भाँति ध्यान किया जाता है। यह सन्धिवेला प्रात: एवं सायं परमेश्वर की उपासना की ओर निर्देश करती है [4] शतपथ ब्राह्मण में भी प्रतिदिन का वेदाध्ययन को ही ब्रह्मयज्ञ बताया है। [5] जो प्रतिदिन स्वाध्याय करता है उसे लोक में तिगुना फल मिलता है ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर पिता और गुरुजनों की सेवा तथा उनकी आज्ञाओं का परिपालन करना और गुरुजनों से निष्ठापूर्वक वेदादि की शिक्षा प्राप्त करना भी ब्रह्मयज्ञ का एक अंग है।

तैत्तिरीय आरण्यक में विधि का निर्देश करते हुए लिखा गया है कि ब्रह्मयज्ञ करने वालों को उत्तर यार पूर्व दिशा में इतनी दूर चला जाना चाहिए, जहाँ से गाँव के घरों का छाजन न दिखाई दे। [6] इसी आरण्यक में ओ यह भी कहा गया है कि यदि वह बाहर न भी जा सके तो उसे प्रात: या सायं गाँव में ही ब्रह्म यज्ञ करना चाहिए। यदि वह बैठन सके तो खड़ा होकर या लेटकर ब्रह्म यज्ञ कर सकता है। [7] उसका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए विधिविधानत: वेद पाठ। उसमें स्थान, तथा परिस्थिति का महत्त्व गौण है।

**2. देवयज्ञ**

इसे अग्निहोत्र या हवन कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि अग्नि में स्वाहा शब्द के साथ हवि या समिधा डालना ही देवयज्ञ है। [8] मनु ने भी इसी को ही देवयज्ञ कहा है। जिन देवताओं के निमित्त होम किया जाता है उनके नाम हैं- सूर्य, अग्नि, प्रजापति, सोम, वनस्पति, इन्द्र, द्यौ, पृथ्वी, धन्वन्तरि विश्वदेव और ब्रह्मा और याज्ञवल्क्य का कहना है कि पहले देवपूजा और उसके बाद देवयजन करण चाहिए [9] स्मृतियों का विधान है कि प्रत्येक गृहस्थ के घर में सायं प्रात: अग्निकुण्ड जलते रहना चाहिए। उसमें केसर, कस्तूरी, घी, तिल, चावल तथा चन्दन आदि सामग्री से हवन होते रहना चाहिए यही देवयज्ञ है। इस यज्ञ का उद्देश्य होता है देवताओं को प्रसन्न करना और उनकी प्रसन्नता से मंगलमय अभीष्टों को प्राप्त करना।

**3. पितृयज्ञ**

जीवित माता-पिता, ऋषिमुनि, बुजुर्ग इन पितरों की तन, मन, धन से सेवा करना ही पितृयज्ञ है। इसके दो भेद हैं- (1) तर्पण, (2) श्राद्ध। तर्पण उसे कहते हैं, जिस कर्म से विद्वानों देव (माता-पिता आचार्य आदि) ऋषि और पितरों को सुखी कहते हैं। [10] उसी प्रकार उन लोगों की श्रद्धा से सेवा करना ही श्राद्ध है। ये दोनों जीवितों के साथ-साथ ही सम्भव होते हैं मृतकों के साथ घटित नहीं हो सकते जीवितों के प्रति ही श्राद्ध तर्पण करने का आदेश वेदों ने दिया है।

शतपथ ब्राह्मण में पितृयज्ञ के विषय में कहा गया है कि प्रतिदिन पितरों के लिए कम से कम जल के द्वारा स्वधा करें यह पितृयज्ञ है।[11] मनुस्मृति कार ने पितृयज्ञ का सम्पादन तीन प्रकार से बताया है। [12] (1) तर्पण द्वारा, (2) बलिहरण द्वारा और (3) प्रतिदिन श्राद्ध द्वारा।

पितृयज्ञ एक महान कर्त्तव्य है उनका निर्वाह करके जीवन में अग्रसर होते जाना ही इस यज्ञ का उद्देश्य है।

**4. भूतयज्ञ (बलिवैश्य देवयज्ञ)**

बलिवैश्य देवयज्ञ अर्थात् घर में जो भी अन्न बनाया गया हो उसमें से खट्टा लवणादि तथा क्षाययुक्त छोड़कर घृत मिष्ठान्न से बलिवैश्य देव यज्ञ करें। अर्थात् उसका प्रथम भाग अग्नि हो समर्पित करें। अथर्ववेद में प्रकृत यज्ञ के विषय में कहा गया है कि हे परमेश्वर! आपकी आज्ञा से नित्य प्रति बलिवैश्य कर्म करते रहें तथा किसी भी प्राणी को पीड़ा न पहुँचायें किन्तु सबको अपना मित्र और अपने को सबका मित्र समझकर परस्पर उपकार करते रहें। [13] शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि प्रतिदिन भूतों के लिए बलि दें। [14] भूतयज्ञ या बलिहरण के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों में अनेक तरह के विधि-विधान निर्दिष्ट है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में लिखा है कि देवयज्ञ से सम्बद्ध देवताओं, जलों, जड़ी-बूटियों, वृक्षों, देवताओं तथा उनके अनुचरों, विश्व देवों सभी प्राणियों तथा राक्षसों को भूतयज्ञ में बलि दी जाती है। [15] मनु ने भी यही विधान किया है। किन्तु उसका यह भी कहना है कि गृहस्थ को बहुत सावधानी से कुत्तों, चाण्डालों, कौवों, कीड़ों आदि को भी बलि देनी चाहिए।

**5. मनुष्य यज्ञ (अतिथि यज्ञ)**

अतिथिसत्कार ही मनुष्य यज्ञ नृयज्ञ या अतिथि यज्ञ है। वेदों और वैदिक ग्रन्थों में अतिथिसत्कार की कर्त्तव्यता पर बड़ा ही बल दिया गया। ऋग्वेद में अग्निदेव को घर की अतिथि मानकर कहा गया है कि तुम उसके रक्षक एवं मित्र बनो, जो तुम्हें विधिवत निष्ठापूर्वक आतिथ्य देता है। [16] इसी प्रकार 'तैत्तिरीय संहिता' में निर्देश दिया गया है कि जब घर में अतिथि का पदार्पण होता है, तो उसे आतिथ्य दिया जाता है। [17] तैत्तिरीयोपनिषद् में समावर्तन संस्कार के समय गुरु शिष्य से

'अतिथि सत्कार करो' (अतिथि देवो भव) का उपदेश देता है। [18] शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि मनुष्य को कम से कम जल से तृप्त करें (शक्ति होने पर भोजन से) इससे मनुष्य यज्ञ होता है। [19]

बोधायन धर्मसूत्र आदि में लिखा है कि बलिहरण के बाद गृहस्थ को अपने घर के आगे अतिथि सत्कार के लिए उतने देर तक अपेक्षा करनी चाहिए जितने समय में गाय दुदी जाती है। 'शांखायन गृह्यसूत्र' का कहना है कि खेत में गिरा हुआ अन्न इकट्ठा करके जीवन चलाने वाले एवं अग्निहोत्र करने वाले गृहस्थ के घर में यदि ब्राह्मण अतिथिसत्कार पाये बिना रह जाय तो वह इस गृहस्थ के सारे पुण्यों को हर लेता है।

इस प्रकार 'मनुष्ययज्ञ' कर्त्तव्य की उदात्त भावना और सर्वभूत दया का प्रेरणा स्रोत है। घर पर आये अतिथि का उदारतापूर्वक आदर सम्मान करना और उसकी यथाशक्ति सहायता करना गृहस्थ आश्रम का मुख्य कर्त्तव्य है।

**उपसंहार**

जीवन में नैतिकता, सदाचार और सद्व्यवस्था के लिएइन पञ्च महायज्ञों का विचार किया गया है। श्रौतयज्ञों की अपेक्षा पञ्चमहायज्ञों के विधि भी सरल एवं सुगम्य है। श्रौत यज्ञों में पुरोहित का मुख्य और गृहस्थ का गौण स्थान होता है। किन्तु पञ्चमहायज्ञों में गृहस्थ को किसी पुरोहित की आवश्यकता नहीं होती है, श्रौतयज्ञों का उद्देश्य है स्वर्ग, सम्पत्ति, पुत्रआदि की कामना, किन्तु पञ्चमहायज्ञों का उद्देश्य विधाता, ऋषियों, पितरों और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जीव-जन्तुओं के प्रति अपने कर्त्तव्यों का परिपालन। इस दृष्टि से मानव जीवन के पञ्चमहायज्ञों का बड़ा महत्त्व है।

वस्तुतः देखा जाए तो पञ्च महायज्ञों के फल में सहज, कर्त्तव्य भावना, निहित है। श्रौतयज्ञों का सम्पादन सबके लिए सम्भव नहीं था किन्तु पञ्चमहायज्ञों को हर कोई कर सकता है और उनसे श्रौतयज्ञों का फल भी प्राप्त हो जाता है। कोई भी स्वर्ग की कामना करने वाला व्यक्ति स्वर्ग मुखअग्नि में समिधा डालकर देवों के प्रति सम्मान की भावना प्रकट कर सकता है, दो एक श्लोकों का पाठ कर ऋषियों की प्रसन्नता के लिए कृतज्ञता ज्ञापित की जा सकती है। एक अंजलि जलदान करके पितरों के प्रति भक्ति भाव व्यक्त कर उन्हें संतुष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य यज्ञों के सम्बन्ध में भी है। संस्कारों के अन्तर्गत समाविष्ट करके पञ्च महायज्ञों को जीवन के सहज कर्त्तव्यों में परिणत किया गया है।

**संधर्व सूची**


1. पञ्चैव महायज्ञाः। तान्येवमहासत्राणि- भूतयज्ञोमनुष्यज्ञः, पितृयज्ञो, देवयज्ञो, ब्रह्मयज्ञ, इति अहरहर्भूतेभ्यो वलिं हरेत तथैतं भूतयज्ञं समाप्नोति अहरहर्दद्यारोदपात्रात् तथैतं मनुष्य यज्ञं समाप्नोति अहरहः स्वधा कुर्यादोद्पात्रात् तथैतं पितृयज्ञं समाप्नोति। अहरहः स्वाहा कुर्यादाकाष्ठात् तथैतं देवयज्ञ समाप्नोति। अर्थ ब्रह्मयज्ञः स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञः। शतपथ ब्रा- 11/5/06
2. ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
   नृ यज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत।। मनु. 4/21
3. अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम्।
   होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।
   स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन होमेर्दैवान यथाविधि।
   पितृन श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा।। मनु. 3/70
4. सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः पातः प्रातः सौमनस्य दाता।
   वसोः वसोः वसुदान एधिवयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।।
   प्रातः प्रातः गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता।
   वसोः वसोः वसुदान एधीन्धानाः त्वा शतं हिमा ऋधेय।। अथर्व. 19/55/3-4
5. स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञः। शतपथ ब्रा. 11/05/6
6. तैत्तिरीय आरण्यक (2/11)
7. तैत्तिरीय आरण्यक (2/12)
8. अहरहः स्वाहा कुर्यादाकाष्ठात् तथैतं देवयज्ञं समाप्नोति। शत.ब्रा.- 11/5/6
9. याज्ञवल्वय स्मृति 1/100
10. पञ्चमहायज्ञविधि (स्वामी दयानन्द सरस्वती) पितृ यज्ञ प्रकरण
11. अहरहः स्वधा कुर्यादोदपात्रत् तथैतं समाप्नोति। शत.ब्रा.- 11/5/6
12. मनुस्मृति- 3/70, 283
13. अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने।
14. रायस्पोषेण समिषा मदन्तो माते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम्।। अथर्व. 19/55/7
15. अहरहभूतेभ्यो बलिहरेत तथैतं भूतयज्ञं समाप्नोति। शत.ब्रा. 11/5/6
16. आश्वलायन गृह्यसूत्र 12/3/11
17. ऋग्वेद (1/73/1, 5/1/8)
18. तैत्तिरीय संहिता (5/2/2/4)
19. तैत्तिरीयोपनिषद् (1/11/2)
20. अहरहर्दद्यादोदपात्रात् तथैतं मनुष्य यज्ञं समाप्नोति। शत.ब्रा. 11/5/6